Shodh Sangam Patrika
E-ISSN: 3049-0707, Volume 2 | Issue 3 | (July – Sep 2025)

श्री अरविंद और भारतीय युवाओं का आत्मनिर्माण: शिक्षा, अध्यात्म और राष्ट्रवाद का त्रिकोण

हर्ष
शोधार्थी – हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश:-

श्री अरविंद भारतीय इतिहास के एक अत्यंत प्रभावशाली व्यक्तित्व थे, जिनका जीवन और शिक्षाएं भारतीय युवाओं के लिए अपार प्रेरणा का स्रोत हैं। वे एक दार्शनिक, योगी, कवि, और राष्ट्रवादी नेता के रूप में प्रसिद्ध हुए, और उनकी विरासत व्यक्तिगत और सामूहिक विकास के लिए गहन दिशा-निर्देश प्रदान करती है। श्री अरविंद की शैक्षिक दृष्टि अत्यंत महत्वपूर्ण और समग्र थी। उन्होंने एक ऐसी शिक्षा प्रणाली की वकालत की, जो केवल जानकारी देने तक सीमित न हो, बल्कि संपूर्ण मानव के पोषण पर जोर दे। उन्होंने आलोचनात्मक सोच, रचनात्मकता और नैतिक मूल्यों के विकास पर बल दिया, ताकि छात्र केवल विद्वान ही न बनें, बल्कि बुद्धिमान और दयालु नागरिक भी बन सकें। उनका उद्देश्य शिक्षा को एक ऐसा साधन बनाना था, जो आत्मविकास के साथ-साथ समाज के प्रति जिम्मेदारी का भी पाठ पढ़ाए। श्री अरविंद ने सांस्कृतिक गर्व और वैश्विक दृष्टिकोण के महत्व को भी उजागर किया। उन्होंने भारत की विशिष्ट आध्यात्मिक विरासत में विश्वास रखा और इसे वैश्विक सभ्यता में योगदान देने की क्षमता मानते थे। वे पूर्व की आध्यात्मिक बुद्धि और पश्चिम की वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति के बीच एक सामंजस्य स्थापित करने का आह्वान करते थे। उनके अनुसार, युवा भारतीय अपनी सांस्कृतिक पहचान में मजबूत रहते हुए, विश्व के साथ जुड़ने में सक्षम हो सकते हैं।

धार्मिक शिक्षा के संदर्भ में भी श्री अरविंद ने मूल्यवान मार्गदर्शन प्रदान किया। उन्होंने धार्मिक शिक्षा को आंतरिक आध्यात्मिक विकास पर केंद्रित करने की आवश्यकता पर बल दिया। उनकी दृष्टि के अनुसार, धार्मिक शिक्षा आत्म-अन्वेषण, नैतिक मूल्यों, विचार की स्वतंत्रता, और आधुनिक ज्ञान के साथ एकीकृत होनी चाहिए। यह दृष्टिकोण युवाओं को जिम्मेदारी से कार्य करने, आत्म-सशक्तिकरण की खोज करने, आत्म-ज्ञान के माध्यम से आंतरिक खुशी प्राप्त करने, और समग्र दृष्टिकोण के साथ जीवन जीने के लिए प्रेरित करता है।

बीज शब्द:- श्री अरविंद, आदर्श, दार्शनिक , राष्ट्र , धर्म , अध्यात्म, शिक्षा, संस्कृति , आत्म-अन्वेषण।

मूल आलेख

"आदर्श के बिना कार्य तो कुछ भी नहीं है और अपनी प्रेरक शक्ति से पृथक होने पर कर्म तो निष्फल हो जाएगा... आदर्शों के बिना कर्म एक झूठा सिद्धांत है"।[1]

यह उत्तर था, जीवन में 'आदर्श' की आवश्यकता पर श्री अरविंद का, उनका स्पष्ट मानना था की आदर्श व्यक्ति के जीवन में दिशा और उद्देश्य प्रदान करता है। यह प्रेरणा स्रोत है, जो उच्चतम मानवीय मूल्यों की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित करता है और आत्मविकास, आध्यात्मिक उन्नति में सहायक होता है।

विकसित भारत के संकल्प को पूरा करने के लिए आज की युवा पीढ़ी के समक्ष 'श्री अरविन्द' के रूप में एक आदर्श पुरुष उपस्थित है। जो युवाओं के लिए एक महान प्रेरणा हो सकते हैं क्योंकि उन्होंने आत्मविकास, आध्यात्मिकता और राष्ट्रीय जागरण पर जोर दिया। उनकी शिक्षाएं युवाओं को उच्च आदर्शों के प्रति समर्पित रहकर, आत्म-अनुशासन, और नैतिकता के साथ जीवन जीने की प्रेरणा देती हैं। उनका दृष्टिकोण और कार्य

युवाओं को देश सेवा और राष्ट्र निर्माण में सक्रिय भागीदारी के लिए प्रेरित करता है। इसी कारण 'सचिदानन्द मोहंती' भी लिखते है:-

"He stands for integration in his life and work. In him, binaries and conflicts are harmonized: the West and the East, English and the Indian languages, city and the region, merit and social justice, religion and secularism, pacifism and militancy, conservation and development, nationalism and internationalism, et al."[2]

श्री अरविंद का भारतीय युवाओं के लिए सम्पूर्ण संदेश आत्म-विकास, उच्च आदर्शों और सच्चे ज्ञान पर आधारित है। उन्होंने युवाओं को अपनी आंतरिक शक्तियों को पहचानने और आत्मा के विकास पर ध्यान केंद्रित करने के लिए प्रेरित किया। श्री अरविंद का मानना था कि शिक्षा का उद्देश्य सिर्फ बौद्धिक विकास नहीं है, बल्कि यह आध्यात्मिक और नैतिक विकास भी होना चाहिए। उन्होंने ब्रह्मचर्य, शारीरिक शिक्षा, और नियमित अभ्यास को जीवन में अपनाने पर जोर दिया। उनके अनुसार, युवा राष्ट्र का भविष्य हैं और यदि वे अपने भीतर की असीमित संभावनाओं को जागृत करते हैं, तो वे न केवल व्यक्तिगत सफलता प्राप्त करेंगे, बल्कि देश के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान देंगे। कलकत्ता के नैशनल कॉलेज के प्राचार्य पद का त्याग करते हुए, उनका विद्यार्थियों को निम्नलिखित संदेश इस भावना को जाहिर करता है:-

"मैं कामना करता हूं कि तुममें से कुछ को महान बना हुआ देखें, महान अपनी हितपूर्ति के लिए नहीं, अपने अहंकार की पुष्टि के लिए नहीं, अपितु मातृभूमि के लिए, भारत को महान बनाने के लिए, ताकि यह विश्व के राष्ट्रों में सम्मान सहित अपना मस्तक ऊंचा कर सके जैसा कि प्राचीन काल में था जब विश्व उससे प्रेरणा पाता था। आप में से जो निर्धन व अप्रसिद्ध रह जाएं उनसे भी मैं निर्धनता व अप्रसिद्धि को मातृभूमि के लिए समर्पित करने की बात चाहूंगा। यदि तुम अध्ययन करो तो उसके लिए अध्ययन करो। उसकी सेवा के लिए अपने मन व आत्मा को प्रशिक्षित करो। जीविका उपार्जन भी करो तो इसलिए कि उसके लिए जी सको। तुम विदेशों में जाना तो इसलिए कि वहां से ज्ञान लेकर लौटो, जिसने उसकी सेवा करो। कार्य करो ताकि उसकी समृद्धि हो। कष्ट उठा लो ताकि वह आनंदित हो सके। इसी एक उपदेश में सब कुछ निहित है।[3]

श्री अरविंद का शिक्षा पर मत प्राचीन भारतीय शिक्षा-व्यवस्था के मूल्यों और आदर्शों पर आधारित है, जिसे उन्होंने आधुनिक संदर्भ में पुनर्स्थापित करने की आवश्यकता पर बल दिया है। उनके विचार में शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान का संचय नहीं, बल्कि आत्मा का विकास और पूर्णता प्राप्त करना है। 'भारत का मस्तिष्क' में उन्होंने ब्रह्मचर्य की महत्ता पर विस्तार से चर्चा की है, जिससे भौतिक और आध्यात्मिक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं और आदर्श विद्यार्थी बनता है। इसके अलावा, वे शारीरिक शिक्षा, खेल और व्यायाम को भी आवश्यक मानते हैं। उनकी शिक्षा-प्रणाली आत्मा पर आधारित है, जिसमें शरीर, प्राण, और मन को आत्मा की शक्तियों के प्रकाशन का परिणाम माना जाता है। अपने एक निबंध ' राष्ट्रीय शिक्षा की भूमिका' में वह शिक्षा का अर्थ और स्वरूप को स्पष्ट करते हुए वह लिखते है:-

"सच्ची शिक्षा वही होगी जो व्यक्ति व राष्ट्र की आत्मा के मन व शरीर में पहुँच कर कार्य करने का मंत्र सिद्ध होगी। और इस प्रकार यह शिक्षा ऐसी होगी जो व्यक्ति के लिए अध्यात्म व उसकी शक्तियों व संभावनाओं को मुख्य लक्ष्य बनाएगी, राष्ट्र के लिए राष्ट्र-धर्म और उसके धर्म के संरक्षण, बल-वर्धन तथा सुदृढ़ीकरण को ध्यान में रखेगी तथा व्यक्ति व राष्ट्र दोनों को ही मानव व मानव जाति के जीवन व विकासशील मन व आत्मा में उन्नत करेगी कौर यह सब करते हुए मह सदैव स्मरण रखेगी, कि मानव का चरम लक्ष्य अपने आत्मस्वरूप का जागरण और विकास है"।[4]

श्री अरविंद ने भविष्य के कार्यों के लिए, ज्ञान और विचारों का एक केंद्र बनाने पर बहुत जोर दिया। इन ज्ञान और विचार केंद्रों से अभिप्राय नवीन शिक्षण केंद्रों से था। उनका मानना था की ये केंद्र राष्ट्र के मस्तिष्क, चरित्र, और दृष्टिकोण में क्रांति लाएगा। पुरानी व्यवस्था हेतु उनका मानना था वह हमारी भावी प्रतिभा को उनकी जड़ों से काटने और उनकी क्षमता को कम करने का कार्य करती है। इसलिए उन्होंने लिखा भी:-

"हमारे विश्वविद्यालयों में प्रचलित प्रणाली ऐसी है जो मनुष्य के मनोविज्ञान की उपेक्षा करती है, लाल फीता शाही से सावधानीपूर्वक बंधे हुए बहुत से छोटे-छोटे पैकेटों से मस्तिष्क को कष्ट पूर्वक भरती है, और इस भार-प्रक्रिया में प्रयुक्त विधियों द्वारा उन क्षमताओं और साधनों को क्षति पहुँचती है"।[5]

यही कारण है की श्री अरविंद शिक्षा को अधिक यथार्थ व प्राचीन भारतीय पद्धति का बनने हेतु तीन महत्वपूर्ण निम्नलिखित सिद्धांत दिए हैं:-

क) शिक्षा सहायता देना है, थोपना नहीं:- शिक्षा का काम छात्रों को मार्गदर्शन और सहायता देना है, न कि उन्हें जबरन ज्ञान थोपना। हर विद्यार्थी चाहे लड़का हो या लड़की, बच्चा हो या वयस्क, इस सिद्धांत पर खरा उतरता है। उनके अनुसार, "कुछ भी सिखाया नहीं जा सकता। अध्यापक का काम सिखाना नहीं बल्कि सहायक और पथप्रदर्शक बनना है। वह बालक को यह बताता है कि वह खुद कैसे ज्ञान प्राप्त कर सकता है। ज्ञान पहले से ही भीतर होता है, अध्यापक केवल उसे उजागर करने में मदद करता है।

ख) विद्यार्थी के मन के 'धर्म' के अनुसार विकास:- विद्यार्थियों को उनके प्राकृतिक गुणों के अनुसार विकसित होने देना चाहिए। हर व्यक्ति में कुछ विशेषताएँ होती हैं जिन्हें पहचान कर विकसित करना चाहिए। शिक्षा का उद्देश्य आत्मा को अपने सर्वोत्तम रूप में प्रकट करने और उसे पूर्णता की ओर ले जाने में सहायता करना है। "मन के विकास में मन का भी परामर्श लेना होगा।

ग) विद्यार्थी का अपने वातावरण के अनुकूल विकास :- छात्रों को उनके अपने समाज, राष्ट्र और संस्कृति के अनुकूल विकसित करना चाहिए। "शिक्षा का तीसरा सिद्धांत है कि हमें छात्रों को उनके मौजूदा और भावी जीवन के लिए तैयार करना है। हमें उनके मन को विदेशी विचारों और जीवन शैली से नहीं भरना चाहिए, बल्कि उनके अपने परिवेश और संस्कृति के अनुकूल बनाना चाहिए।

श्री अरविंद मातृभाषा में शिक्षा देने के प्रबल समर्थक थे। उनका मानना था कि मातृभाषा में शिक्षा सबसे स्वाभाविक और प्रभावी होती है, जिससे छात्र जटिल विषयों को बेहतर समझ पाते हैं। मातृभाषा से जुड़ाव विद्यार्थियों को उनकी सांस्कृतिक और भाषाई जड़ों से जोड़ता है, जिससे उनकी सोचने-समझने की क्षमता और रचनात्मकता में वृद्धि होती है। श्री अरविंद के अनुसार, मातृभाषा में शिक्षा न केवल बौद्धिक विकास में सहायक होती है, बल्कि आत्म-अभिव्यक्ति और आत्म-सम्मान को भी प्रोत्साहित करती है, जिससे विद्यार्थियों का समग्र विकास होता है। इसी संदर्भ में श्री अरविंद कहते हैं कि:-

"पहले बच्चे को मातृभाषा पर पूर्ण अधिकार हासिल करना चाहिए, फिर उसे दूसरी भाषाएं सीखनी चाहिए। ताकि बच्चों के मानसिक गुणों के अनुसार उन्हे शिक्षा दी जा सके। छोटे बच्चों के लिए अतीत के उच्च उदाहरणों को रोचक रूप में प्रस्तुत करने आवश्यक है, ताकि उन्हे नैतिक शिक्षा स्वाभाविक रूप से मिल सके। बड़े विद्यार्थियों के लिए, महान आत्माओं के विचार, उच्चतम भावनाओं और आदर्शों को प्रेरित करने वाले साहित्य, इतिहास और जीवनियों को पढ़ाए जाने जरूरी है"।[6]

इसके अलावा, श्री अरविंद ने आर्य गुणों के अभ्यास के लिए व्यावहारिक अवसर प्रदान करने की आवश्यकता पर भी जोर दिया। उनका यह तर्क नहीं था कि प्राचीन शिक्षा प्रणाली को उसके बाह्य स्वरूप में पुनः स्थापित किया जाए, बल्कि इसके मूल सिद्धांत हर समय के लिए उपयुक्त हैं। उनका मानना था कि इन सिद्धांतों को गहन मनोविज्ञान और प्रभावी अनुशासन के माध्यम से पुनः लागू किया जा सकता है, जो आधुनिक आवश्यकताओं के अनुरूप हो।

आज के भारतीय युवा विज्ञान और तर्क, धार्मिक कट्टरता, विविधता, आधुनिक जीवनशैली, और पारिवारिक दबाव के बीच धर्म और अध्यात्म को समझने में खुद को असमंजस में पाते हैं। ऐसे में श्री अरविंद जिस प्रकार आज के युवाओं के समक्ष धर्म और अध्यात्म का मार्ग प्रशस्त करते है, वह अत्यंत बहुमूल्य है। 'गीता प्रबंध' में बड़ी सहजता से उन्होंने अर्जुन के माध्यम से आज की युवा पीढ़ी को धर्म और अध्यात्म का पाठ पढ़ाया है। आज की युवा पीढ़ी से श्री अरविंद, अर्जुन के समान ही श्री कृष्ण अर्थात धर्म और अध्यात्म पर श्रद्धा रखने की अपेक्षा रखते हुए, अर्जुन के माध्यम से लिखते है :-

"वे उन लोगों से क्या मांगते है जो उनके कर्म को करने की अभिकांक्षा रखते है, अर्थात जुगुप्सा और वासना-कामना से मुक्ति होना होगा, फल की इच्छा न रख कर भगवान के लिए कर्म करना होगा , अपनी इच्छा का त्याग करना होगा और निश्चेष्ट तथा यंत्र बनकर भगवान के हाथों में रहना होगा, ऊँच और नीच, मित्र और शत्रु, सफलता और विफलता के प्रति समदृष्टि रखनी होगी और फिर उनके कर्म में कोई अवहेलना न होगी" ।[7]

यहाँ श्री अरविंद का श्रद्धा से अभिप्राय 'अंध श्रद्धा' से नहीं है, बल्कि वह जो चाहते है वह एक मौलिक श्रद्धा है, जो विवेक और स्थिरता के साथ सुरक्षित हो। यह इसलिए आवश्यक है क्योंकि ये तत्व आध्यात्मिक साधक की चेतना के लिए महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने खुद भी ऐसा ही अनुभव किया है और देखा है कि इस प्रकार की श्रद्धा ने उन अनावश्यक दुविधाओं को दूर कर दिया है, जहाँ यह माना जाता है कि या तो हर अति भौतिक वस्तु पर संदेह करना होगा या पूरी तरह से विश्वास करना होगा।

श्री अरविंद का हिंदू और सनातन धर्म पर दृष्टिकोण गहन और व्यापक था। उन्होंने इसे मानवता के लिए एक शाश्वत और सार्वभौमिक मार्ग माना, जो आत्मा की उन्नति और मुक्ति की दिशा में ले जाता है। श्री अरविंद ने प्राचीन हिंदू शिक्षाओं को आधुनिक संदर्भ में पुनः व्याख्यायित किया और धर्म व विज्ञान के बीच संतुलन पर बल दिया। उन्होंने हिंदू धर्म की विविधता और सहिष्णुता की प्रशंसा की और इसे आत्मज्ञान, शांति, और ईश्वर के साथ एकात्मता की दिशा में मार्गदर्शक माना, वह हिन्दू धर्म के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए लिखते भी है की:-

"In our own, which is the most sceptical and the most believing of all, the most sceptical because it has questioned and experimented the most, the most believing because it has the deepest experience and the most varied and positive spiritual knowledge, that wider Hinduism which is not a dogma or combination of dogmas but a law of life, which is not a social framework but the spirit of a past and future social evolution, which rejects nothing but insists on testing and experiencing everything and when tested and experienced turning it to the soul's uses, in this Hinduism we find the basis of the future world-religion. This sanatana dharma has many scriptures, Veda, Vedanta, Gita, Upanishad, Darshana, Purana, Tantra, nor could it reject the Bible or the Koran; but its real, most authoritative scripture is in the heart in which the Eternal has His dwelling. It is in our inner spiritual experiences that we shall find the proof and source of the world's Scriptures, the law of knowledge, love and conduct, the basis and inspiration of Karmayoga"।[8]

श्री अरविंद के उपरोक्त मत से स्पष्ट की हिंदू धर्म सबसे अधिक सायमवादी और विश्वास रखने वाला है, जो जीवन का नियम है, कोई मत नहीं। यह सब कुछ जांचता और अनुभव करता है, और आत्मा के उपयोग में लाता है। इसका वास्तविक शास्त्र हृदय में है जहाँ शाश्वत का वास होता है, और कर्मयोग का आधार है। इसी सनातन हिन्दू धर्म पर श्री अरविंद युवाओं को श्रद्धा रखने की बात करते है, क्योंकि श्रद्धा रखने मात्र से व्यक्ति को धर्म के सिद्धांतों को समझने और पालन करने में मदद करती है, जिससे आत्मिक शांति और मानसिक संतुलन प्राप्त होता है, और जीवन को सकारात्मक दिशा मिलती है। इसे श्री अरविंद 'अर्जुन' के माध्यम से स्पष्ट करते हुए लिखते है:-

"अर्जुन नमूना है संघर्ष में पड़े हुए उस मानव-आत्मा का जिसे अभी तक ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है, पर जो मानव-जाति में विद्यमान उन श्रेष्ठतर तथा भागवत आत्मा के उत्तरोत्तर अधिकाधिक समीप में रहने तथा उनका अंतरंग सखा होने के कारण इस ज्ञान को कर्म-जगत में प्राप्त करने का अधिकारी हो गया है" ।[9]

यही कारण है की श्री अरविंद युवाओं को यह आत्मविश्वास भी देते है की हिंदू धर्म, या सनातन धर्म, भावी विश्व-धर्म बन सकता है। यह धर्म सभी सम्प्रदायों और विज्ञान को समन्वित कर सकता है। यह न केवल प्राचीन ईश्वरवाद, ईसाइयत, मुहम्मदी मत और बौद्ध धर्म का आलिंगन करता है, बल्कि उन्हें परखकर आत्मा के उपयोग में लाता है। यह कोई सामाजिक ढांचा नहीं है, बल्कि जीवन का नियम है, जो अतीत और भविष्य के सामाजिक विकास की आत्मा है। लेकिन इसे वह मूल रूप में समझने की ही प्रेरणा देते है, वह सनातन और हिन्दू धर्म के ज्ञान को विदेशियों द्वारा समझाए जाने की खिलाफ है, इसलिए वह लिखते भी है:-

"भारतीयो, भारत की आध्यात्मिकता, भारत की साधना, 'तपस्या', 'ज्ञान' और 'शक्ति' ही हमें अवश्य स्वतंत्र और महान बनावेगी। परन्तु पूर्व के ये महान भाव अंग्रेजी के घुठिया पर्यायों 'डिसिप्लिन', 'फिलासफी', 'स्ट्रेंग्थ' से ठीक प्रकट नहीं होते" ।[10]

श्री अरविंद के लिए राष्ट्र केवल भौगोलिक या राजनीतिक इकाई नहीं था; उन्होंने इसे एक आध्यात्मिक और सांस्कृतिक जीव के रूप में देखा। उनके अनुसार, राष्ट्र की असली पहचान उसकी सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विरासत से है। उन्होंने भारतीय राष्ट्र की पुनरुत्थान पर जोर दिया, जिसमें आध्यात्मिक जागरूकता और नैतिकता की महत्वपूर्ण भूमिका थी। उनके मुताबिक, एक सशक्त राष्ट्र तभी बन सकता है जब उसकी आत्मा और संस्कृति को पुनर्जीवित किया जाए। उनकी राष्ट्र और राष्ट्रीयता की अवधारणा से आज की युवा पीढ़ी को महत्वपूर्ण सीख मिलती है कि राष्ट्र की ताकत उसकी सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विरासत में निहित होती है। इसलिए युवाओं को अपनी सांस्कृतिक जड़ों को समझने और संजोने की आवश्यकता है। वह यह भी सिखाते हैं कि राष्ट्रीय उन्नति का मतलब केवल भौतिक विकास नहीं, बल्कि आत्मिक और नैतिक विकास भी जरूरी है। युवाओं को समाज और संस्कृति की सेवा करने, एकता बनाए रखने, और नैतिक मूल्यों को प्राथमिकता देने पर ध्यान देना चाहिए। इन सिद्धांतों को अपनाकर, युवा पीढ़ी एक सशक्त और समृद्ध राष्ट्र की दिशा में योगदान कर सकती है। श्री अरविंद के लिए भारत केवल भूमि का टुकड़ा नहीं है, बल्कि एक जीवित साक्षात देवी स्वरूप है, जिसका सुंदर वर्णन करते हुए वह लिखते है:-

"जिस दिन हम लोग अखण्डस्वरूपा माता की मूर्ति का दर्शन कर लेंगे, उसके रूप लावण्य पर मुग्ध होकर उसके कार्य में जीवन उत्सर्ग करने के लिए उन्मत्त हो जाएंगे, उस दिन सारी बाधाएं अपने आप ही दूर हो जाएंगी और भारत की एकता, स्वाधीनता तथा उन्नति सहज हो जाएगी" ।[11]

श्री अरविंद के विचार में राष्ट्र, राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद का विशेष महत्व है। उन्हें 'भारतीय राष्ट्रीयता का अग्रदूत' कहा गया है। उन्होंने भारत राष्ट्र की आत्मा को गहराई से समझा, जो राष्ट्र निर्माण के लिए जरूरी है। उनके

अनुसार, राष्ट्र केवल एक भूखंड या कल्पना नहीं है, बल्कि एक महाशक्ति है जो करोड़ों लोगों की शक्तियों का संगठित रूप है। राष्ट्रीयता सिर्फ राजनीतिक कार्यक्रम नहीं है, यह एक धर्म है जिसे ईश्वर ने दिया है और हमें इसके अनुसार जीना चाहिए। अगर तुम राष्ट्रवादी बनना चाहते हो, तो इसे धार्मिक भाव से अपनाओ। श्री अरविंद ने लिखा कि राष्ट्र में भगवती एकता की भावना ही राष्ट्रीयता है। इसमें सभी लोग, चाहे उनके काम राजनीतिक, सामाजिक या आर्थिक हों, समान और एक हैं। भारत जिस राष्ट्रीयता का आदर्श प्रस्तुत करेगा, उसमें मानवता, जाति और वर्ग के बीच समानता होगी। इसी केन्द्रीय भाव को श्री अरविंद अपने 'उत्तरपाड़ा' के भाषण द्वारा युवाओं के समक्ष रखते हुए कहते है:-

"जब मैं उन युवकों के बीच आया तो मैंने देखा कि इनमें से बहुतो में एक प्रचंड साहस, अपने को मिटा देने की एक ऐसी शक्ति है जिसकी तुलना में मैं कुछ भी नहीं था। इनमें से एक या दो को मैंने ऐसा पाया जो केवल बल और चरित्र में ही मुझसे बढ़कर नहीं थे-ऐसे तो बहुतेरे थे पर मैं जिस बौद्धिक योग्यता का अभिमान रखता था, उसमें भी वे बढ़े हुए थे। भगवान ने मुझसे फिर कहा यही वह युवक दल वह नवीन और बलवान् जाति है जो मेरे आदेश से ऊपर उठ रही है। ये तुमसे अधिक बड़े हैं। तुम्हें अब भय किस बात का ? तुम यदि इस काम से हट जाओ या सो जाओ तो भी यह कार्य संपन्न होगा। कल यदि तुम इस कार्य से हटा लिये जाओ तो यह युवक समुदाय तुम्हारे काम को उठा लेगा और उसे इतनी शक्ति के साथ करेगा जिसके साथ तुमने कभी नहीं किया होगा। तुमने इस देश को एक वाणी सुनाने के लिये मुझसे कुछ शक्ति पायी है और यह वाणी इस जाति को ऊपर उठाने में सहायक होगी।"[12]

श्री अरविंद ने भारतीय युवाओं को बार-बार सचेत किया कि वे यूरोपीय आदर्शों का अनुसरण न करें, बल्कि सच्चे 'भारतीय' बनें। भारतीय बनने का मतलब है आध्यात्मिक दृष्टि से संपन्न होना। अगर वे यूरोपीय विचारों का पालन करेंगे या जीवन को भौतिक दृष्टि से देखेंगे, तो वे अपनी पहचान नहीं बना सकेंगे और सफलता पाना उनके लिए कठिन होगा। भौतिक दृष्टि से वे कुछ नहीं हैं, लेकिन आध्यात्मिक दृष्टि से वे सब कुछ हैं। भारत का जीवन केवल भौतिक नहीं है, बल्कि बहुत ऊंचे स्तर का है, और हमें उसी स्तर को पूरा करने के लिए जीना चाहिए। इसलिए, हमें अपने राष्ट्र-जीवन को उसी तरह से विकसित करने की आवश्यकता है। इसलिए वह लिखते है:-

"राष्ट्रवाद का जो अर्थ भारत विश्व के समक्ष रखने वाला है उसके अंतर्गत व्यक्ति तथा व्यक्ति, जाति तथा जाति और वर्ग तथा वर्ग के बीच समानता होगी। जैसा कि तिलक ने कहा है, वे सब भिन्न होते हुए भी समान और राष्ट्र में साक्षात्कृत विराट् पुरुष के अंग होंगे।"[13]

निष्कर्ष :-

श्री अरविंद की शिक्षाएं और विचार भारतीय युवाओं के लिए एक अमूल्य मार्गदर्शक हैं, जो व्यक्तिगत और सामूहिक विकास के लिए व्यापक दिशा-निर्देश प्रदान करती हैं। उनकी शैक्षिक दृष्टि ज्ञान के संचित करने से अधिक महत्वपूर्ण है, जो पूरी मानवता के पोषण पर केंद्रित है। वे केवल विद्वत्ता नहीं, बल्कि नैतिकता, आत्मविकास, और रचनात्मकता के विकास पर भी बल देते हैं। श्री अरविंद ने सांस्कृतिक गर्व और वैश्विक दृष्टि के महत्व को समझाया, जो भारतीय युवाओं को अपनी सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखते हुए विश्व के साथ जुड़ने की प्रेरणा देती है।

राष्ट्रवाद के उनके विचार सिर्फ राजनीतिक स्वतंत्रता तक सीमित नहीं थे, बल्कि भारत के आध्यात्मिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण को भी शामिल करते थे। उन्होंने राष्ट्रीयता की आध्यात्मिक नींव, विविधता में एकता, आत्मनिर्भरता और सशक्तिकरण पर जोर दिया। धार्मिक शिक्षा पर उनकी दृष्टि आत्म-अन्वेषण और नैतिक मूल्यों के साथ आधुनिक ज्ञान के एकीकरण की आवश्यकता पर बल देती है। श्री अरविंद की शिक्षाएं आज के युवाओं

को आत्म-सशक्तिकरण, नैतिक मूल्य, और सांस्कृतिक पहचान के प्रति जागरूक करती हैं, और उन्हें एक सशक्त और समृद्ध राष्ट्र की दिशा में योगदान करने के लिए प्रेरित करती हैं।

संदर्भ सूची:-

1. शर्मा, श्याम बहादुर, श्री अरविंद विचार और दर्शन, अरविंद प्रकाशन ,चावडी बाजार, दिल्ली-06, प्रकशन वर्ष -1986, पृष्ठ -75-76.
2. Mohanty, sachidananda, sri aurbindo; a contemporary reader, routledge house, Tolstoy marg, new delhi-01, publication-2008, page no -9.
3. शर्मा, श्याम बहादुर, श्री अरविंद विचार और दर्शन, अरविंद प्रकाशन ,चावडी बाजार, दिल्ली-06, प्रकशन वर्ष -1986, पृष्ठ -57.
4. शर्मा, श्याम बहादुर, श्री अरविंद विचार और दर्शन, अरविंद प्रकाशन ,चावडी बाजार, दिल्ली-06, प्रकशन वर्ष -1986, पृष्ठ -43.
5. https://incarnateword.in/cwsa/1/the-brain-of-india
6. शर्मा, श्याम बहादुर, श्री अरविंद विचार और दर्शन, अरविंद प्रकाशन ,चावडी बाजार, दिल्ली-06, प्रकशन वर्ष -1986, पृष्ठ -46.
7. श्री अरविंद, उत्तरपाड़ा आमभाषण, श्री अरविंद ग्रंथमाला, 16 rue desbassin de richemount, पांडेचरी, प्रकशन वर्ष 1942, पृष्ठ- 6।
8. heehs, peter the essential writings of sri aurbindo, oxford university press, publication year 1998, pageno- 45-46.
9. श्री अरविंद, गीता प्रबंध ;प्रथम भाग, श्री अरविंद ग्रंथमाला, 16 rue desbassin de richemount, पांडेचरी, प्रकशन वर्ष 1942, पृष्ठ- 33।
10. शर्मा, श्याम बहादुर, श्री अरविंद विचार और दर्शन, अरविंद प्रकाशन ,चावडी बाजार, दिल्ली-06, प्रकशन वर्ष -1986, पृष्ठ -58.
11. शर्मा, श्याम बहादुर, श्री अरविंद विचार और दर्शन, अरविंद प्रकाशन ,चावडी बाजार, दिल्ली-06, प्रकशन वर्ष -1986, पृष्ठ -65.
12. श्री अरविंद, उत्तरपाड़ा आमभाषण, श्री अरविंद ग्रंथमाला, 16 rue desbassin de richemount, पांडेचरी, प्रकशन वर्ष 1942, पृष्ठ- 10-11।
13. शर्मा, श्याम बहादुर, श्री अरविंद विचार और दर्शन, अरविंद प्रकाशन ,चावडी बाजार, दिल्ली-06, प्रकशन वर्ष -1986, पृष्ठ -55.